The Opinion, Vol. 5, No. 10, July-December, 2016 **ISSN : 2277-9124**

महिला सशक्तिकरण में कानून की भूमिका : एक विश्लेषण

प्रियंका कुमारी*

किसी भी देश की प्रगति और सम्पन्नता पुरूषों और महिलाओं की समानता पर निर्भर करती है। अगर महिलाओं को पुरूषों के समान अधिकार नहीं है तो वह देश अनेक दृष्टि से पिछड़ा समाज जाएगा। आज आवश्यकता इस बात की है कि महिलाओं को स्वयं की ताकत के बारे में जागृत किया जाए। महिलाओं जब तक अपनी शक्ति क्षमता व आत्मविश्वास को जागृत नहीं करेंगी तब तक बाहय कारक उन्हें सशक्त नहीं बना सकते। सश्क्त समाज से ही देश मजबूत होता है। महिलाओं के सशाक्तिकरण का तात्पर्य है सामाजिक सेवाओं में समान अवसर, राजनैतिक और अर्थिक नीति निर्धारण में भागीदारी, समान कार्य के लिए समान वेतन, कानून के तहत सुरक्षा एवं प्रजनन का अधिकार इत्यादि।

शाब्दिक अर्थों में महिला सशक्तिकरण का अर्थ महिलाओं का शक्ति–सम्पन्न होना है। शक्ति व साधन दोनों ही जीवन की गुणात्मकता से जुड़ी हुई अवधारणाएँ हैं। जीवन की गुणात्मकता व्यक्ति के जीवन स्तर, जीवन–सन्तोष, सुख, समृद्धि, विकास व उन्नति के अवसरों का एक समग्र मूल्यांकन है। जिसे प्राप्त करने के लिए जीवन कुशलता का होना आवश्यक है। अर्थात् स्वयं के जीवन पर नियंत्रण, निर्णय क्षमता, संसाधनों का उचित उपभोग, सुरक्षा, वांछनीय शैक्षणिक व आर्थिक जीवन स्तर पर विशेष रूप से अपने–आप को पहचानना और क्षमताओ व साधनों के अनुरूप अपनी उन्नति की ओर बढ़ना। महिला सशक्तिकरण का अन्य मुख्य घटक स्वयं की प्रजनन क्षमता से सम्बन्धित चयन व नियंत्रण करना भी है।[1] परिवार एवं समाज रूपी गाड़ी पुरूष और नारी जैसी दो पहिए के सहयोग से चलती है। अतः दोनों को समान रूप से सशक्त एवं गतिशील होना आवश्यक है। किन्तु महिलाओं के साथ यह स्थिति देखने को नहीं मिलती है। महिला सशक्तिकरण को जितना सहज ढंग से समझा जा सकता है, उतना ही कठिन है, उसे अवधारणात्मक रूप में पारिभाषित करना। सशक्तिकरण एक सापेक्षिक प्रक्रिया है जिसमें अपेक्षाकृत कम शक्ति वाला वर्ग अपने लिए शक्ति बढ़ाने की माँग तथा प्रयास करता है। महिला सशक्तिकरण को इसी संदर्भ में समझा जा सकता है।

सशक्तिकरण एक व्यापक शब्द है, जिसमें अधिकारों और शक्तियों का स्वाभाविक रूप से समावेश है। यह एक ऐसी मानसिक अवस्था है जो कुछ विशेष आन्तरिक कुशलताओं और शैक्षिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक आदि परिस्थितियों पर निर्भर करती है जिसके लिए समाज में आवश्यक कानूनों, सुरक्षात्मक प्रावधानों और उनके भली–भांति क्रियान्वयन हेतु सक्षम प्रशासनिक व्यवस्था का होना आवश्यक है। यह एक ऐसी बहुआयामी प्रक्रिया है जो महिलाओं को शक्ति प्राप्त करने के प्रति जागरूक बनाती है तथा उनमें सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक तथा आर्थिक संसाधनों पर नियंत्रण प्राप्त करने की क्षमता का विकास करती है। इसके अतिरिक्त मानसिक तथा राजनीतिक रूप से भी उन्हें सशक्त बनाने का प्रयास किया जाता है। सशक्तिकरण की प्रक्रिया उन्हें अपने जीवन को स्वयं निर्देशित करने के लिए प्रेरित करती है तथा घर एवं घर के बाहर के विषयों में निर्णय लेने की उनकी भागीदारी में वृद्धि करती है। समाज में पुरूष एवं महिला के बीच शक्ति एवं सत्ता के न्यायपूर्ण वितरण अथवा दोनों में समानता के आधार पर सत्ता में सामंजस्यपूर्ण भागीदारी पर जोर देती है। दूसरे शब्दों में महिला सशक्तिकरण शब्द का प्रयोग सामान्यतः उस विचारधारा तथा आन्दोलन के लिए किया जाता है जिसका उद्देश्य सदियों से चले आ रहे पुरूष प्रधान समाज में महिलाओं को मुक्ति दिलाना है।[2]

महीला सशक्तिकरण पर बल देने के लिए भारत के साथ–साथ विभिन्न देशों ने भी काफी प्रयास किया है। तथा इस दिशा में सजग हैं।

---

* **शोध छात्रा, स्नातकोत्तर समाजशास्त्र विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची**

केन्या की राजधानी नैरोबी में 1985 में सम्पर्क अन्तर्राष्ट्रीय महिला सम्मेलन में महिला सशक्तिकरण को परिभाषित किया गया। महिला सशक्तिकरण का अर्थ– महिलाओं की पुरूषों के बराबर वैधानिक, राजनीतिक, शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्रों में उनके परिवार, समुदाय, समाज एवं राष्ट्र की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में निर्णय लेने की स्वायत्तता है। भारत में महिला सशक्तिकरण से तात्पर्य प्राथमिक रूप से महिलाओं की सामाजिक एवं आर्थिक दशा में सुधार लाना है।[3]

शताब्दियों से भारतीय महिलाओं की स्थिति दयनीय और शोचनीय रही है। उसे दोयम दर्जे का भी नागरिक नहीं समझा गया है। अत्याचार, उत्पीड़न, दोहन उसके जन्म से जुड़े थे। वह परिवार की सदस्य होते हुए भी उपेक्षा की पात्र बनी रही। उसके कर्तव्य थे, अधिकार नहीं। इस तरह पुरूष और स्त्री की स्थिति में असमानता ही नहीं बल्कि एक बड़ी खाई रही है। पुरूष प्रधान समाज में आयु के विभिन्न पड़ाव पर वह पुरूषों के अधीन रही है। पिता, पति और पुत्र किसी न किसी रूप में वह इनके संरक्षण में बंधी रही है। संविधान निर्माताओं को इन वास्तविकताओं की भली–भांति जानकारी थी। अस्तु उन्होंने भारतीय महिलाओं के उत्थान, कल्याण के लिए अनेक सकारात्मक उपाय किए जिन्हें संवैधानिक रूप से लागू भी किया गया। संवैधानिक प्रावधानों से भारतीय स्त्रियों की स्थिति में जहाँ सुधार देखने को मिल रहा है, वहीं स्त्री में अपने अधिकार के प्रति चेतना का भी प्रादुर्भाव हुआ है। यही कारण है कि संविधान प्रस्तावना में समानता की बात कही गई है। भारतीय संविधान ने विधि के समक्ष सभी को समान माना है चाहे वह महिला हो या पुरूष अथवा अमीर, गरीब या साक्षर–निरक्षर संविधान निर्माताओं ने सभी को सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक न्याय देने का आश्वासन देते हुए संविधान की प्रस्तावना में ही स्पष्ट किया है कि संविधान के समक्ष स्त्री और पुरूष का कोई भेद नहीं है। संविधान की प्रस्तावना में प्रतिष्ठा और अवसर की समानता तथा व्यक्ति की गरिमा इत्यादि वाक्यांशों का प्रयोग कर यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि भारत में अब भेदभाव जैसे पुरानी मान्यताओं का कोई स्थान नहीं है।

सदियों पुरानी भारतीय संस्कृति ने युग के साथ अपने को बदला है। किन्तु अनेक प्रकार के परिवर्तनों के बावजूद भी प्राचीन धार्मिक–सांस्कृतिक मूल्य हमारे जीवन के हिस्से हैं। स्त्री की भावनाओं और आचरण को धर्मशास्त्रों के उपदेशों और कर्मकांडों ने इतना जकड़ रखा है कि इस रूढ़िवादी, परम्परात्मक ढाँचे से सदियों तक उबर नहीं पाई हैं। यही कारण है कि भारतीय समाज में स्त्री की स्थिति परिवार और समाज में अभी तक बहुत अच्छी नहीं कही जा सकती है। इतना अवश्य है कि नगर व महानगरों की महिलाओं में जागरूकता है। वे शिक्षित हुई हैं और स्वालम्बी बन रही हैं। इसमें कानून और संविधान का महत्वपूर्ण योगदान है।[4]

किसी भी देश के कानून अथवा सामाजिक विधानों को देखकर यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि अमुक देश की सामाजिक–आर्थिक, धार्मिक और सांस्कृतिक रूढ़ियाँ और परम्पराएँ कैसी है? उस देश की महिलाओं की स्थिति कैसी है? यह कहा जा सकता है कि किसी भी देश में जितने अधिक कानून होंगे उस देश में उतनी ही अधिक जटिल समस्याएँ भी होंगी। इस तरह कानून अथवा अधिनियम समाज का दर्पण है। हमारे देश और समाज में मलिाओं का शोषण, उत्पीड़न और अपमान न हो इसलिए भारतीय संविधान में उन्हें समानता का दर्जा तो दिया ही गया साथ ही उनकी सुरक्षा और उत्थान के लिए प्रावधान भी किए गए।

भारतीय संविधान के विभिन्न अनुच्छेदों में महिलाओं के लिए कई ऐसे प्रावधान किये गये हैं, जो महिलाओं के बहुमुखी विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं, इन प्रावधानों को निम्नलिखित रूप से समझ सकते हैं[5]–

1. **अनुच्छेद 14** : इसके अंतर्गत महिलाओं को राजनैतिक, आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्रों में विधि के समक्ष समान अधिकार एवं अवसर प्रदान किया गया है। अर्थात् महिला एवं पुरूष को बिना भेद–भाव के समान समझा जाता है।
2. **अनुच्छेद 15** : इसके अंतर्गत महिलाओं और बच्चे के हितों की रक्षा के लिए राज्य विशेष व्यवस्था करेगा। राज्य किसी नागरिक के विरूद्ध केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान या इनमें से किसी के आधार पर कोई विभेद नहीं करेगा। साथ ही इस बात का भी उल्लेख किया गया है कि इस अनुच्छेद की कोई बात राज्य को स्त्रियों और बालकों के लिए कोई विशेष

उपबंध करने से निवारित नहीं करेगा। अर्थात् राज्य द्वारा महिलाओं तथा बच्चों के हितों को देखते हुए बनाया गया कोई कानून इस अनुच्छेद के विरूद्ध नहीं माना जाएगा।

3. **अनुच्छेद 16 :** इसके अंतर्गत सरकार के अधीन नियोजन एवं नियुक्तियों में सभी नागरिकों को समान अवसर प्राप्त होगा।
4. **अनुच्छेद 23 :** इसके अंतर्गत महिलाओं के दुर्व्यापार, शोषण तथा बलात् श्रम इत्यादि को प्रतिषिद्ध किया गया है।
5. **अनुच्छेद 39 :** इसके अंतर्गत बताया गया है कि राज्य अपनी नीति का इस प्रकार संचालन करेगा जिससे कि पुरूष और स्त्री सभी नागरिकों को समान रूप से जीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त करने का अधिकार सुनिश्चित हो। तथा पुरूष एवं स्त्रियाँ दोनों को समान कार्य के लिए समान वेतन सुनिश्चित हो।
6. **अनुच्छेद 40 :** इसके अंतर्गत ग्राम पंचायतों तथा नगरों निकायों में आरक्षित तथा अनारक्षित वर्ग की महिलाओं हेतु 33% आरक्षण की व्यवस्था की गयी है।
7. **अनुच्छेद 42 :** इसके अंतर्गत राज्य को निर्देश दिया गया है कि राज्य काम की न्यायसंगत और मानवोचित दशा सुनिश्चित करेगा और मातृत्व प्रसूति सहायता को उपलब्ध करेगा।
8. **अनुच्छेद 51 (क) :** इसमें इस बात का उल्लेख है कि भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य होगा कि वह भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे और ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो स्त्रियों के सम्मान के विरूद्ध है।

समाज में महिला का महत्वपूर्ण स्थान है। महिला तथा पुरूष एक ही सिक्के के दो पहलू है। इनमें से एक का विकास होना या विकास का अवरूद्ध हो जाना, पूरे समाज को प्रभावित करता है। वर्षों से महिलाओं की स्थिति एक शोषित के रूप में रही है और जब कभी उसकी स्थिति को सशक्त करने का प्रयास किया गया, अन्य लोगों द्वारा उसे बलपूर्वक दबा दिया गया। उन्हें कई प्रकार के रीति–रिवाजों में फंसाकर, उसकी स्वयं के बारे में सोंच को ही समाप्त कर दिया गया। बाल–विवाह का रिवाज, आजीवन वैध्वय की बाध्याता, दहेज प्रथा या सम्पत्ति पर अधिकार निषेध ने महिला के स्वतन्त्र विकास में बाधा उत्पन्न की है। इन रीति–रिवाजों में परिवर्तन करना आसान नहीं है। अतः महिलाओं की स्थिति में सुधार के लिए कानून का निर्माग किया गया। महिलाओं से सम्बंधित हमारे देश में अनेक कानून बनाए गए हैं तथा संविधान में भी महिलाओं को वे अधिकार नहीं मिले जो सही मायने में उन्हें मिलने चाहिए।

भारतीय संविधान में कई ऐसे अधिनियम बनाए गए हैं जिनकी सहायता से महिलाओं के हितों की रक्षा की जा सकती है। इसके अलावा अंग्रेजों के शासनकाल में भी कुछ महिला संबंधी अधिनियम बनाए गए थे जिनके कारण महिलाओं की स्थिति में काफी सुधार देखने को मिले, जो निम्नलिखित हैं[6]–

सती–प्रथा निषेध अधिनियम (1829) :

सन् 1829 से पूर्व भारत में सती प्रथा का प्रचलन था। विधवा स्त्री को मृत पति के साथ चिता में जलकर मरने के लिए प्रेरित किया जाता और विवश भी। लॉर्ड विलियम बेंटिक के शासनकाल में बंगाल में 800 विधवाएं सती हुई। इस अमानवीय कृत्य के विरूद्ध राजा राममोहन राय ने आंदोलन आरंभ किया। सन् 1929 में लॉर्ड विलियम बेंटिक ने सती–प्रथा को गैर–कानूनी घोषित करके इसके विरूद्ध कड़ा कानून बना दिया। यह राजा राममोहन राय के ही प्रयासों का शुभ परिणाम था।

बाल–विवाह निरोधक अधिनियम (1829) :

बाल–विवाह को समाप्त करने के लिए 'ब्रह्म समाज' और 'आर्य–समाज' का योगदान काफी महत्वपूर्ण है। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर और कुछ अन्य व्यक्तियों के विरोध के कारण सन् 1860 में एक अधिनियम द्वारा लड़की की न्यूनतम उम्र 10 वर्ष कर दी गई तत्पश्चात् यह बढ़ाकर 12 वर्ष की गई। सन् 1929 में श्री हरविलास शारदा के प्रयासों से 'बाल–विवाह निरोधक' अधिनियम पारित हुआ। इसे शारदा एक्ट भी कहते है। इस अधिनियम को 1930 में सम्पूर्ण भारत वर्ष में लागू कर दिया गया। वर्तमान में विवाह अधिनियम में संशोधन के उपरांत लड़के की विवाह के समय आयु 21 वर्ष तथा लड़की की 18 वर्ष से कम नहीं होनी चाहिए।

हिन्दू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम (1856) :

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर जैसे समाज सुधारक ने कानून के द्वारा विधवा–पुनर्विवाह की माँग की। परिणाम स्वरूप सरकार ने हिन्दू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम सन् 1856 को पारित कर दिया। इस अधिनियम के अंतर्गत विधवाओं एवं इनके माता–पिता को विधवा पुनर्विवाह का अधिकार दिया गया।

हिन्दू स्त्रियों का सम्पत्ति पर अधिकार अधिनियम (1937) :

इस अधिनियम के तहत विधवा के लिए सम्पत्ति संबंधी कुछ व्यवस्थाएँ प्रदान की गई। दाय भाग में नियंत्रित परिवार में अगर बिना वसीयत किये ही किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है तो ऐसी स्थिति में स्त्री को सम्पत्ति में पुत्र के बराबर अधिकार प्राप्त होगा। मिताक्षरा से नियंत्रित परिवार में अगर वसीयत नहीं की गई है तो ऐसी स्थिति में स्त्री का अपने पति की सम्पत्ति पर उसका सीमित अधिकार होगा। वह इस सम्पत्ति का उपयोग तो कर सकती है परन्तु न तो उसे बेच सकती है और न ही किसी को दे सकती है। अगर परिवार में किसी लड़के की मृत्यु पिता से पहले ही हो जाती है, तो उसे ऐसी अवस्था में विधवा को पति के हिस्से का उत्तराधिकार लड़कों एवं पौत्रों के साथ ही प्राप्त हो जायेगा। इस व्यवस्था से स्पष्ट ज्ञात होता है कि विधवाओं को सम्पत्ति पर अधिकार कुछ सीमा तक प्राप्त हो गए थे।

विशेष विवाह अधिनियम (1954) :

यह अधिनियम 1872 में पारित किया गया। सन् 1923 में इस अधिनियम में संशोधन किया गया और यह अनुमति दी गई कि विभिन्न जातियों को आपस में विवाह करने की स्वतंत्रता है। इसके साथ ही तलाक का भी अधिकार दिया गया। सन् 1954 में विशेष विवाह अधिनियम में 1872 के अधिनियम को समाप्त कर दिया गया। इस अधिनियम के तहत ये अधिकार दिया गया कि दो भारतीयों को चाहे वे किसी भी जाति या धर्म के हों, न्यायालय की सहायता से विवाह कर सकते हैं।

पृथक रहने पर और भरण–पोषण हेतु हिन्दू विवाहित स्त्रियों का अधिकार अधिनियम (1946) :

हिन्दू स्त्रियों को तलाक का कानूनी अधिकार मिल जाने के बावजूद उसे कुछ विशेष परिस्थितियों में अपने पति से पृथक रहने पर भरण–पोषण के लिए कुछ अधिकार दिये गये हैं। जैसे अगर पति ऐसे घृणित रोग से पीड़ित हो जो पत्नी के सम्पर्क से उत्पन्न न हुआ हो। पति यदि पत्नी के साथ अत्याचार करता है और उसके साथ रहने से जीवन को खतरा है। पति ने दूसरा विवाह कर लिया हो। इसी तरह पति ने अपना धर्म त्याग कर दूसरा धर्म ग्रहण कर लिया हो या पति का किसी दूसरी स्त्री के साथ संबंध हो। पति के पृथक रहने की राजाज्ञा प्राप्त होने पर अदालत को यह अधिकार होगा कि पति की आय तथा उसकी स्थिति को ध्यान में रखकर वह स्त्री को भरण–पोषण के लिए उचित राशि दिलवाये।

स्वतंत्रता के पश्चात् बने अधिनियम :

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सरकार द्वारा महिलाओं की आर्थिक, सामाजिक, शैक्षणिक और राजनीतिक स्थिति में सुधार लाने तथा उन्हें विकास की मुख्य धारा में समाहित करने हेतु अनेकों कल्याणकारी योजनाओं और विकासात्मक कार्यक्रमों का संचालन किया गया। महिलाओं को शिक्षा के समुचित अवसर उपलब्ध कराकर उन्हें अपने अधिकारों एवं दायित्वों के प्रति सजग करते हुए उनकी सोच में मूलभूत परिवर्तन लाने, आर्थिक गतिविधियों में उनकी अभिरूचि उत्पन्न कराकर उन्हें आर्थिक, सामाजिक दृष्टि से आत्मनिर्भरता और स्वाबलम्बन की ओर अग्रसारित करने जैसे अहम् उद्देश्यों की पूर्ति हेतु विशेष प्रयास किये गये। आजादी के बाद देश में महिलाओं के सशक्तिकरण की दिशा में सरकार द्वारा समय–समय पर प्रयास किये जाते रहे हैं। स्वतंत्रता के पश्चात् बने अधिनियम निम्नलिखित रूप से हैं–

स्त्रियों का अनैतिक व्यापार निरोधक अधिनियम (1956) :

इस अधिनियम के तहत वेश्यावृत्ति को एक दंडनीय अपराध माना गया है। दोषी व्यक्तियों को 1 वर्ष से लेकर 15 वर्ष तक कैद और 2000 रूपया तक के जुर्माने का प्रावधान है। इस अधिनियम में लड़कियों और स्त्रियों को इस व्यवसाय को करने के लिए प्रोत्साहित करना भी दंडनीय अपराध माना जाता है।

दहेज निरोधक अधिनियम (1961) :

दहेज पर नियंत्रण करने के लिए 1961 में सरकार ने इस अधिनियम को पारित किया। इसमें दहेज देने और लेने वाले दोनों दंड के भागीदार हैं।

चिकित्सा गर्भ समापन अधिनियम (1971) :

यह अधिनियम केवल 12 सप्ताह तक के गर्भ के गर्भपात कराने की अनुमति देता है। इसे केवल रजिस्टर्ड डॉक्टर ही कर सकता है। गर्भपात उस स्थिति में भी कराया जा सकता है जब गर्भवती महिला अथवा गर्भ में पलने वाले बच्चों का जीवन खतरे में हो अथवा उसे किसी गंभीर बीमारी से ग्रस्त होने की संभावना हो।

कन्या भ्रूण हत्या अधिनियम (2003) :

प्रसवपूर्व भ्रूण जाँच तकनीकी अधिनियम 1994 में बनाया गया। गर्भपात के कुछ और तकनीकों का विकास होने के कारण इस कानून में 2003 में संशोधन किया गया। लिंग चयन एवं लिंग जाँच पर रोक लगा दी गई। यह 14 फरवरी 2003 से लागू कर दिया गया है।

आजादी के बाद देश में महिलाओं के सशक्तिकरण की दिशा में सरकार द्वारा समय–समय पर प्रयास किये जाते रहे हैं। महिलाओं के प्रति भेदभाव को दूर करने एवं शोषण को समाप्त करने तथा अन्य स्तरों पर उन्हें कानूनी संरक्षण देने के लिए केन्द्र सरकार द्वारा उल्लेखनीय सुधार किये गये हैं[7]–

हिन्दू उत्तराधिकार (संशोधन) अधिनियम (2005) :

महिलाओं के सशक्तिकरण की दिशा में एक अभिनव प्रयास हेतु हिन्दू उत्तराधिकार (संशोधन) अधिनियम 2005 पारित किया गया। इसमें हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम 1956 की धारा 4 की उपधारा 2 तथा धारा 23 एवं 24 को लोप कर 6 को अंत में स्थापित किया गया है। इस संशोधन के द्वारा पिता की सम्पत्ति में पुत्रियों को वही अधिकार दिया गया है जो पुत्रों को प्राप्त है। इतना ही नहीं अधिनियम में पूर्व में मृत पुत्री की संतानों को वह अधिकार दिया गया है जो पूर्व में मृत पुत्र के संतानों को प्राप्त है। अधिनियम की धारा पुनर्विवाह करने वाली स्त्री के पिता की सम्पत्ति पर से अधिकार को समाप्त करती थी। इस प्रकार महिला को निवास गृह के संबंध में विभाजन की माँग करने से वंचित करने वाली धारा 23 का विलोपन कर दिया गया है।

घरेलू हिंसा से संरक्षण अधिनियम (2005) :

घरेलू हिंसा एवं उत्पीड़न से सुरक्षा प्रदान करने हेतु एक विधेयक संसद द्वारा वर्ष 2005 के मॉनसून सत्र में पारित किया गया। घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम 2005 बनाम के इस अधिनियम को राष्ट्रपति ने सितम्बर 2005 में स्वीकृति प्रदान की। यह अधिनियम जम्मू–कश्मीर को छोड़कर पूरे भारत में लागू हैं। इस अधिनियम के अंतर्गत महिलाओं को शारीरिक मानसिक, मौखिक आर्थिक तथा यौन उत्पीड़न सहित सभी तरह की पारिवारिक हिंसा से संरक्षण प्रदान करने का प्रावधन किया गया है। महिलाओं के लिए बिना किसी शुल्क के कानूनी सहायता उपलब्ध कराने का प्रावधान भी किया गया है। यह अधिनियम बिना विवाह के पुरूष के साथ रह रही महिला, विधवाओं तथा अकेले जीवन व्यतीत कर रही महिलाओं का भी संरक्षण करता है। इस अधिनियम के अंतर्गत दोषी पाए गए व्यक्ति को एक वर्ष की कैद तथा 20,000 रूपया जुर्माना का प्रावधान है।

उपरोक्त अधिनियमों के अतिरिक्त बगान श्रम अधिनियम 1951 के अंतर्गत महिला कर्मचारियों को अपने बच्चे को स्तनपान कराने हेतु आवश्यक रूप से अवकाश दिया जाना, कर्मचारी राज्य बीमा विनिमय अधिनियम 1952 के अंतर्गत प्रसूति लाभ के लिए दावा को चिकित्सीय प्रमाण पत्र की तिथि से मान्य किया जाना, खान अधिनियम 1952 के अंतर्गत भूमिगत खानों में महिलाओं के नियोजन पर प्रतिबंध लगाया जाना, प्रसूति सुविधा अधिनियम 1961 के अंतर्गत 80 कार्य दिवस पूरे होने पर महिला कर्मियों को प्रसव अथवा गर्भपात कराने हेतु आवश्यक रूप से निर्धारित अवकाश तथा चिकित्सा सुविधा दिया जाना इत्यादि भी शामिल है।

लेकिन सिर्फ वैधानिक या संवैधानिक अधिकारों द्वारा ही महिला सशक्तिकरण तथा स्त्री–पुरूष समानता का लक्ष्य प्राप्त करना मुश्किल है, अतः इसके लिए आवश्यक है कि महिलाओं में शिक्षा की स्थिति सुदृढ़ हो। शिक्षा, स्वास्थ्य तथा कल्याण तीनों क्षेत्र में आपस में एक–दूसरे के साथ सह संबंध

स्थापित करते हुए महिलाओं के लिए कार्य करें। महिलाओं से संबंधित कानूनों एवं संवैधानिक प्रावधानों को महिला और समाज के बीच पहुँचाने के लिए विभिन्न संचार माध्यमो– टी.वी., समाचार–पत्र, इंटरनेट इत्यादि का प्रयोग किया जाना चाहिए। जिससे कि महिलाएँ स्वयं के लिए बनाए गए प्रावधानों की जानकारी से अपने अधिकारों के प्रति अधिक सजग हो सकेगी। लेकिन इन सबके लिए महिलाओं का शिक्षित होना सर्वथा अनिवार्य है क्योंकि शिक्षा से ही उनमें जागरूकता उत्पन्न होगी वे अपने अधिकारों की लड़ाई स्वयं लड़ सकने में सक्षम हो सकेगी। इसमें कोई दो राय नहीं है कि भारतीय सरकार ने समय–समय पर महिलाओं के उत्थान के लिए विभिन्न अधिनियमों का निर्माण किया है। तथा विभिन्न योजनाओं के द्वारा भी उन्हें स्वाबलम्बी बनाने का निरंतर प्रयास किया जा रहा है, किन्तु इस भ्रष्ट होती शासन व्यवस्था में जितना लाभ महिलाओं को मिलना चाहिए, नहीं मिला है। यथार्थता यह है कि महिलाओं की स्थिति बदलने हेतु विभिन्न सरकारी व कानूनी प्रयास तभी अधिक कारगर हो सकेंगे जबकि समाज की सोच, पूर्वाग्रह और पूर्वधारणाओं में भी बदलाव लाया जा सके। इसके लिए राजनीतिक दल, स्वयं सेवी संस्थाएँ, गैर सरकारी संगठन और मीडिया इत्यादि बड़ी भूमिका निभा सकते हैं।

सामान्य रूप से महिलाओं में देखा जाता है कि उनमें अपने अधिकारों के प्रति जितनी जागरूकता होनी चाहिए वह नहीं होती, अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए जो जुझारूपन होना चाहिए उसका अभाव होता है, इसका एक मुख्य कारण है कि राज्य और राष्ट्रीय स्तर पर कोई शक्तिशाली महिला संगठन नहीं है। नगरों में महिलाओं को जागरूक करने वाली जो महिला समितियाँ या संगठन हैं भी तो वह छोटी–छोटी हैं। अतः महिलाओं को अधिक जागरूक तथा आर्थिक रूप से सुदृढ़ करने की आवश्यकता है, जिससे वे अपने अधिकारों के समुचित उपयोग हेतु जागरूक हो सकें। समाज में महिलाओं की स्थिति में सुधार लाने हेतु हमें अशिक्षा, आर्थिक पिछड़ापन, जागरूकता का आभाव, अधिकारों के ज्ञान का आभाव इत्यादि चुनौतियों से निपटना होगा। और इसका समाधान समाज के मूल विचारों व भावनाओं में परिवर्तन करके ही किया जा सकता है। इसके लिए आवश्यक है कि स्त्री से संबंधित कानूनों की जानकारी महिलाओं और पुरूषों दोनों तक पहुँचनी चाहिए तथा पुरूषों को भी अपने पारम्परिक सोच में परिवर्तन लाना आवश्यक है। साथ ही महिलाओं की समस्याओं का यथाशीघ्र निर्णय किया जाना भी जरूरी है। इसके लिए आवश्यक है कि न्याय प्रक्रिया में बदलाव लगाया जाए। तथा समयबद्ध निर्णय देने की योजना होनी चाहिए। उपरोक्त सभी बातों पर अमल करके ही सही मायने में महिला सशक्तिकरण की दिशा में उठाए पर विभिन्न संवैधानिक, वैधानिक व अन्य प्रयास अत्यधिक सार्थक हो सकेंगे।

संदर्भ सूची

1. कौशिक, आशा : नारी सशक्तिकरण विमर्श एवं यथार्थ, पोइन्टर पब्लिशर्स जयपुर, 2004, पृष्ठ संख्या – 158
2. कुमार, मिथिलेश : महिला सशक्तिकरण में कानून की भूमिका, नव्या शोध पत्रिका, अंक द्वितीय, जनवरी 2011, पृष्ठ संख्या 80
3. सिंह, उमेश प्रताप एवं गर्ग, राजेश कुमार : महिला सशक्तिकरण विभिन्न आयाम, अध्ययन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नयी दिल्ली, 2012, पृष्ठ संख्या 73
4. सिंह वी.एन. सिंह जनमेजय : आधुनिक एवं नारी सशक्तिकरण, रावत पब्लिकेशन्स जयपुर, 2010, पृ0 258, 260
5. सक्सैना, ऋचा राज एवं साहनी, ऋचा : महिला सशक्तिकरण एवं लिंगभेद, लक्ष्मी प्रकाशन दिल्ली, 2010, पृष्ठ संख्या 101–105
6. सिंह, वी.एन. एवं सिंह जनमेजय (पूर्वोद्धृत) : पृष्ठ संख्या 261–266
7. सिंह, उमेश प्रताप सिंह एवं गर्ग, राजेश कुमार : (पूर्वोद्धृत); पृ0 75